International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 10-07-2026, Accepted: 10-08-2026, Published: 25-08-2026
Volume 8, Issue 3, 2026, Page No. 33-37

संत शिरोमणि रैदास के काव्य में जाति–आधारित ऊँच–नीच का प्रतिवाद

बलवान सिंह
राजकीय शिक्षा महाविद्यालय, जम्मू कश्मीर, भारत
DOI: https://doi.org/10.66856/ijrh.2026.8.3.8059

सारांश
संत शिरोमणि रैदास का काव्य भारतीय संत परंपरा में सामाजिक समता, मानवीय गरिमा और जाति–विरोधी चेतना का सशक्त दस्तावेज़ है। उन्होंने जन्म आधारित ऊँच–नीच, अस्पृश्यता तथा सामाजिक बहिष्कार का तार्किक, नैतिक और आध्यात्मिक स्तर पर प्रतिवाद करते हुए कर्म, भक्ति और मानव–मर्यादा को श्रेष्ठता का वास्तविक आधार माना। प्रस्तुत शोधपत्र में रैदास के काव्य में निहित जाति–विरोधी विमर्श का ऐतिहासिक, सामाजिक और दार्शनिक विश्लेषण किया गया है तथा समकालीन सामाजिक न्याय, संवैधानिक मूल्यों और लोकतांत्रिक चेतना के संदर्भ में उसकी प्रासंगिकता का मूल्यांकन किया गया है।

मूल शब्दः संत रैदास, जाति–व्यवस्था, सामाजिक समता, मानवतावाद, बेगमपुरा

भूमिका

भारतीय समाज की ऐतिहासिक संरचना में वर्ण एवं जाति–व्यवस्था का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। प्रारम्भिक वैदिक काल में वर्ण–व्यवस्था मुख्यतः कर्म पर आधारित मानी जाती थी, किन्तु कालान्तर में यह जन्म पर आधारित कठोर जाति–व्यवस्था में रूपांतरित हो गई। जिसका परिणाम यह हुआ कि समाज अनेक जातियों और उपजातियों में विभक्त हो गया तथा सामाजिक ऊँच–नीच, अस्पृश्यता और बहिष्कार जैसी अमानवीय प्रवृत्तियाँ संस्थागत रूप धारण करने लगीं। इस व्यवस्था का सबसे बुरा प्रभाव उन समुदायों पर पड़ा, जिन्हें तथाकथित निम्न जातियों के रूप में चिह्नित किया गया।

मध्यकालीन भारतीय समाज में जातिगत भेदभाव केवल सामाजिक संबंधों तक सीमित नहीं था, बल्कि धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसकी गहरी पैठ थी। मंदिर–प्रवेश, शिक्षा, सार्वजनिक संसाधनों के उपयोग तथा सम्मानजनक जीवन के अवसरों पर भी जाति का प्रभाव दिखाई देता था। ऐसे समय में संत परंपरा ने जन्म पर आधारित श्रेष्ठता की अवधारणा का विरोध करते हुए मानव–मर्यादा और आध्यात्मिक समानता की स्थापना का प्रयास किया।

इसी संत परंपरा में संत शिरोमणि रैदास का स्थान अत्यंत विशिष्ट है। रैदास ने जाति–व्यवस्था का विरोध केवल वैचारिक स्तर पर ही नहीं किया, बल्कि अपने जीवन, आचरण और काव्य के माध्यम से उसका सशक्त प्रतिवाद प्रस्तुत किया। उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि मनुष्य की श्रेष्ठता जन्म से नहीं, बल्कि उसके कर्म, सदाचार, भक्ति और नैतिक जीवन से निर्धारित होती है। उनके काव्य में जाति–विरोध किसी आक्रोशपूर्ण प्रतिक्रिया का परिणाम नहीं, बल्कि मानवीय गरिमा और आध्यात्मिक समता की स्थापना का सकारात्मक प्रयास है।

रैदास की वाणी में सामाजिक न्याय, श्रम की प्रतिष्ठा, समानता और प्रेम के मूल्य एक–दूसरे से गहरे जुड़े हुए हैं। वे ऐसे समाज की कल्पना करते हैं जहाँ किसी व्यक्ति का मूल्यांकन उसकी जाति के आधार पर न होकर उसकी मानवीय संवेदनशीलता और कर्मनिष्ठा के आधार पर हो। उनके द्वारा प्रतिपादित बेगमपुरा की अवधारणा इसी समतामूलक समाज का आदर्श प्रतिरूप है।

आज जब भारतीय संविधान समानता, स्वतंत्रता, गरिमा और सामाजिक न्याय को मूलभूत संवैधानिक मूल्य के रूप में स्वीकार करता है, तब रैदास का जाति–विरोधी चिंतन नई प्रासंगिकता प्राप्त करता है। उनका काव्य केवल मध्यकालीन सामाजिक यथार्थ का प्रतिरोध नहीं, बल्कि आधुनिक लोकतांत्रिक समाज के लिए भी नैतिक प्रेरणा का स्रोत है। इस दृष्टि से 'रैदास के काव्य में जाति–आधारित ऊँच–नीच का प्रतिवाद' साहित्यिक, दार्शनिक और सामाजिककृतीनों स्तरों पर गंभीर अध्ययन की अपेक्षा रखता है।

मध्यकालीन भारतीय समाज और जाति–व्यवस्थाः ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

संत रैदास का काव्य उस ऐतिहासिक समय का प्रतिनिधित्व करता है जब भारतीय समाज जातिगत विभाजन, धार्मिक रूढ़ियों और सामाजिक असमानताओं से गहराई तक प्रभावित था। यद्यपि वर्ण–व्यवस्था का प्रारम्भिक स्वरूप कर्म आधारित माना जाता है, परंतु मध्यकाल तक आते–आते यह जन्म आधारित कठोर जाति–व्यवस्था में परिवर्तित हो चुका था। परिणामस्वरूप सामाजिक प्रतिष्ठा, धार्मिक अधिकार, शिक्षा, व्यवसाय और संसाधनों तक पहुँच जाति के आधार पर निर्धारित होने लगी।

यह व्यवस्था केवल सामाजिक वर्गीकरण तक सीमित नहीं थी, बल्कि उसने मनुष्य की गरिमा को भी प्रभावित किया। तथाकथित निम्न जातियों को अस्पृश्य मानकर सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक अधिकारों से वंचित रखा गया। मंदिरों में प्रवेश, सार्वजनिक जलस्रोतों का उपयोग, औपचारिक शिक्षा तथा सम्मानजनक सामाजिक सहभागिता पर अनेक प्रकार के प्रतिबंध लगाए जाते थे। इस प्रकार जाति केवल पहचान का आधार नहीं रही, बल्कि सामाजिक शक्ति–संबंधों का माध्यम बन गई।

भक्ति आंदोलन का उदय इसी सामाजिक पृष्ठभूमि में हुआ। निर्गुण संतों विशेषतः कबीर, रैदास, दादूदयाल और गुरु नानक ने जाति–आधारित विभाजन का विरोध करते हुए मनुष्य की आध्यात्मिक समानता पर बल दिया। इनमें रैदास का योगदान विशिष्ट है क्योंकि उन्होंने जातिगत अपमान को स्वयं अनुभव किया था। इसलिए उनके काव्य में जाति–विरोध केवल सैद्धांतिक विचार नहीं, बल्कि खुद के जीवन अनुभव से उपजा हुआ सत्य है।

> "रविदास भारतीय संस्कृति में व्याप्त उस पुरोहित वर्ग के वर्चस्व का प्रतिवाद करते हैं, जिसने अपने प्रपंची अनुष्ठानों के माध्यम से ईश्वर को 'अपने ईश्वर' में बदल दिया है। भूख, प्यास,

गरीबी से अधिक रविदास को तत्कालीन समाज में वर्चस्व की सत्ता से टकराना पड़ा था।" [1]

रैदास का चिंतन इस ऐतिहासिक यथार्थ के विरुद्ध एक वैचारिक प्रतिरोध है । उन्होंने जाति–व्यवस्था को धर्म का अंग मानने से इनकार किया और यह प्रतिपादित किया कि ईश्वर की दृष्टि में सभी मनुष्य समान हैं–

"रैदास इक ही नूर ते, जिमि उपज्यों संसार।
ऊँच नीच किह बिध गये, ब्राह्मण अरु चमार।।" [2]

इस प्रकार उनका काव्य सामाजिक इतिहास के भीतर प्रतिरोध और पुनर्निर्माण—दोनों की प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व करता है।

संत शिरोमणि रैदासः जीवनानुभव और जातिगत चेतना

रैदास का व्यक्तित्व उनके काव्य से पृथक नहीं किया जा सकता। उनका जीवन ही उनके दर्शन का सबसे प्रामाणिक आधार है। वे ऐसे समुदाय से संबंधित थे, जिसे तत्कालीन समाज में सामाजिक सम्मान प्राप्त नहीं था । किंतु उन्होंने इस सामाजिक स्थिति को आत्महीनता का कारण नहीं बनने दिया, बल्कि इसे मानवीय समानता के पक्ष में एक नैतिक और आध्यात्मिक तर्क में रूपांतरित कर दिया। डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर संत रविदास युगीन समाज की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखते हैं–

"संत रविदास का जिस मध्य युग में आविर्भाव हुआ, उस समय देश और समाज की बेहद विषम स्थिति थी। देश में मुस्लिम शासन होने के कारण धार्मिक कट्टरपंथता ज़ोरों पर थी। सत्ता के जोर पर, वैभव का प्रलोभन दर्शाकर, धर्म परिवर्तन कराने का अभियान तेजी पर था। दूसरी ओर ऊँच–नीच, जात–पात, छुआछूत की भावनाओं में डूबा, अनंत कुरीतियों व कर्मकांडों में उलझा हिंदू धर्म खंड विखंड होते हुए भी देवी–देवताओं व भगवान तथा अवतारों के घेरे में घिरा हुआ था। दोनों ही धर्मावलंबी समाज के मध्यवर्गीय नीची छोटी कही जाने वाली जाति के लोगों के उत्पीड़न व शोषण में जुटे थे। धर्म उस समय ऊँचे लोगों के पास क़ैद था और जन–साधारण की मानवता आहत हो कराह रही थी, संत रविदास ने पवित्र नगरी काशी को अपनी कर्मस्थली बनाकर भारतीय समाज को मानवता के प्रेम में बांधकर विश्व– भ्रातृभाव का संदेश दिया।" [3]

रैदास ने कभी अपनी सामाजिक पृष्ठभूमि को छिपाने का प्रयास नहीं किया। इसके विपरीत उन्होंने उसे स्वीकार करते हुए यह दिखाया कि मनुष्य की वास्तविक पहचान उसकी जाति नहीं, बल्कि उसका चरित्र, श्रम और भक्ति है। उनके जीवन का यह पक्ष अत्यंत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इससे उनके विचारों की विश्वसनीयता और प्रामाणिकता बढ़ती है–

"जब जनमे तउ सूदर थे, अरु थे अति अपवित्र।
वरण करम सों होत है, रविदास करौ जउ नित्त।।" [4]

उनके काव्य में आत्मसम्मान की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। यह आत्मसम्मान किसी दूसरे वर्ग के प्रति घृणा पर आधारित नहीं है, बल्कि अपने मानवीय अस्तित्व की गरिमा के बोध पर आधारित है। रैदास का संघर्ष प्रतिशोध का नहीं, बल्कि सम्मानजनक सह–अस्तित्व का संघर्ष है।

उनकी जातिगत चेतना सामाजिक विभाजन को स्थायी मानने के बजाय उसे परिवर्तनशील मानती है। उनका विश्वास है कि यदि मनुष्य अपने भीतर सत्य, प्रेम और भक्ति का विकास करे तो जातिगत भेदभाव स्वतः समाप्त हो सकता है। यद्यपि आधुनिक समाजशास्त्र संरचनात्मक परिवर्तन की आवश्यकता पर भी बल देता है, फिर भी रैदास की यह नैतिक दृष्टि सामाजिक परिवर्तन की आधारभूमि तैयार करती है।

रैदास के काव्य में जाति–आधारित ऊँच–नीच का प्रतिवाद

रैदास के काव्य का सबसे सशक्त पक्ष जाति–आधारित ऊँच–नीच का स्पष्ट और तार्किक प्रतिवाद है। उन्होंने किसी विशेष जाति के विरुद्ध नहीं, बल्कि उस मानसिकता के विरुद्ध आवाज़ उठाई जो जन्म के आधार पर मनुष्य की गरिमा का निर्धारण करती है।

उनकी प्रसिद्ध पंक्तियाँ—

"जाति–जाति में जाति है, ज्यों केलन के पात।
रैदास मानुष न जुड़ सके, जब तक जाति न जात॥" [5]

इन पंक्तियों में रैदास जाति–व्यवस्था की विडंबना को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करते हैं। केले के तने की परतों की भाँति जातियों के भीतर उपजातियों का निरंतर विभाजन समाज को एकता से दूर ले जाता है। यहाँ जाति केवल सामाजिक संस्था नहीं, बल्कि मनुष्य और मनुष्य के बीच कृत्रिम दूरी का प्रतीक बन जाती है। रैदास का निष्कर्ष स्पष्ट है कि जब तक जातिगत विभाजन समाप्त नहीं होगा, तब तक वास्तविक सामाजिक एकता संभव नहीं है–

"रैदास इक ही बूंद सो, सब ही भयो वित्थार।
मुरखि हैं जो करत हैं, बरन अबरन विचार।।" [6]

इसी प्रकार वे एक अन्य पद में संकेत करते हैं कि ईश्वर की दृ ष्टि में किसी मनुष्य का मूल्य उसकी जाति से नहीं, बल्कि उसकी भक्ति और आचरण से निर्धारित होता है। यह दृष्टिकोण धार्मिक समानता और सामाजिक समानताकृदोनों का समन्वय प्रस्तुत करता है–

"रैदास जो करता सरिस्टि का, वह तो करता एक।
सभ महि जोति सरूप इक, काहे कहू अनेक।।" [7]

रैदास के जाति–विरोध की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह केवल निषेधात्मक नहीं है। वे जाति का विरोध करते हुए उसके स्थान पर समता, श्रम, प्रेम और नैतिकता पर आधारित समाज की स्थापना का प्रस्ताव भी रखते हैं। इस कारण उनका प्रतिवाद रचनात्मक और सकारात्मक बन जाता है।

उनका काव्य यह भी स्पष्ट करता है कि जातिगत श्रेष्ठता का अहंकार आध्यात्मिक उन्नति में सबसे बड़ी बाधा है। जो व्यक्ति अपने जन्म पर गर्व करता है, वह ईश्वर के सार्वभौमिक स्वरूप को नहीं समझ सकता। इसलिए रैदास के लिए जाति–विरोध केवल सामाजिक प्रश्न नहीं, बल्कि आध्यात्मिक आवश्यकता भी है।

जाति–विरोध की दार्शनिक आधारभूमि

रैदास का जाति–विरोध किसी राजनीतिक विचारधारा का परिणाम नहीं, बल्कि उनके दार्शनिक और आध्यात्मिक चिंतन का स्वाभाविक निष्कर्ष है। उनके अनुसार समस्त सृष्टि एक ही परम सत्ता की अभिव्यक्ति है। यदि सभी मनुष्यों में एक ही ईश्वरीय चेतना विद्यमान है, तो किसी को ऊँचा और किसी को नीचा मानना सत्य के विरुद्ध है–

"एकै माटी के सभे भांडे, सभ का एकौ सिरजनहारा।
रैदास व्यापै एकौ घट भीतर, सभ को एकै घड़े कुम्हारा।।" [8]

यह विचार भारतीय अद्वैत परंपरा और निर्गुण भक्ति की उस धारा से जुड़ता है जिसमें ईश्वर सर्वव्यापक और सर्वसमावेशी माना गया है। रैदास इस आध्यात्मिक एकत्व को सामाजिक समानता का आधार बनाते हैं –

"सब में हरि हरि में सब हैं, हरि अपने निज जाना।
अपनी आप साखि नहिं, दूजै जाने जानन हारा।।" [9]

इस प्रकार उनका दर्शन केवल ईश्वर और जीव के संबंध की व्याख्या नहीं करता, बल्कि मनुष्य और मनुष्य के संबंधों का भी नैतिक पुनर्निर्माण करता है।

उनके चिंतन में भक्ति, सत्य और समता परस्पर संबद्ध हैं। जहाँ भेदभाव है, वहाँ सच्ची भक्ति नहीं हो सकती; जहाँ अहंकार है, वहाँ सत्य का अनुभव संभव नहीं; और जहाँ सत्य नहीं है, वहाँ न्यायपूर्ण समाज की स्थापना भी संभव नहीं। इस प्रकार जाति–विरोध उनके संपूर्ण दर्शन की केंद्रीय धुरी बन जाता है–

"पांडेय हरि विचि अंतर डाढा।
मुंड मुंडावे सेवा पूजा भ्रम का बंधन गाढ़ा।
माला तिलक मनोहर बानौ लागो जम की फांसी।
जो हरि सेती जोड़्या चाहो तौं जग सो रहौं उदासी।" [10]

रैदास का यह दृष्टिकोण आधुनिक मानवाधिकार विमर्श के साथ भी सामंजस्य रखता है। आज मानवाधिकार का मूल सिद्धांत यह है कि प्रत्येक मनुष्य समान गरिमा और अधिकारों का अधिकारी है। रैदास ने सदियों पूर्व इसी विचार को आध्यात्मिक और नैतिक आधार प्रदान किया था–

"यह वीसवीं सदी की औपनिवेशिक सत्ता द्वारा स्थापित आलोचनात्मक विवेक के बहुत पहले की पंद्रहवीं सदी की घटना है जिसमें रविदास भक्ति काव्य के अंतरवेशी (Inclusive) लोकवृत्त का निर्माण कर रहे थे। वे न केवल दलित जातियों के जातीय गौरव को स्वर दे रहे थे बल्कि उनके के कारण ही दलित जातियाँ जातीय गौरव से जुड़ रही थीं। कई पदों में अपनी जाति के रूप में चमार शब्द का उल्लेख इसी जाति गौरव की भावना की अभिव्यक्ति ही रहा।" [11]

रैदास का जाति–विरोध केवल सामाजिक प्रतिक्रिया नहीं अपितु एक सुविचारित दार्शनिक और नैतिक दृष्टि है। उनका जीवन, आध्यात्मिक अनुभव और सामाजिक संवेदनशीलता मिलकर ऐसे चिंतन का निर्माण करते हैं जो जन्म आधारित ऊँच–नीच को अस्वीकार कर मानव–मर्यादा, समता और न्याय को सर्वोच्च मूल्य के रूप में स्थापित करता है। यही कारण है कि उनका काव्य मध्यकालीन सामाजिक इतिहास के साथ–साथ समकालीन लोकतांत्रिक समाज के लिए भी समान रूप से प्रेरणादायी बना हुआ है।

श्रम की गरिमा और जाति–व्यवस्था का प्रतिवाद

संत रैदास के जाति–विरोधी चिंतन की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उन्होंने जाति–व्यवस्था का विरोध केवल वैचारिक स्तर पर नहीं किया, बल्कि श्रम की गरिमा को उसके विकल्प के रूप में प्रतिष्ठित किया। मध्यकालीन समाज में व्यवसायों का जाति से घनिष्ठ संबंध था। जिन समुदायों का जीवन श्रम पर आधारित था, उन्हें सामाजिक दृष्टि से हीन माना जाता था। रैदास ने इसी व्यवस्था को चुनौती देते हुए श्रम को मनुष्य की गरिमा, आत्मनिर्भरता और नैतिक श्रेष्ठता का आधार घोषित किया–

"रैदास हौं निज हत्थहिं, राखौ रांबी आर।
सुकिरित ही मम धरम है, तारेगा भव पार।।" [12]

रैदास स्वयं श्रमजीवी थे। उन्होंने अपने पारंपरिक व्यवसाय को कभी त्यागा नहीं और न ही उसे अपनी आध्यात्मिक साधना के विपरीत माना। इसके विपरीत, उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि ईमानदार श्रम ही सच्ची साधना है। यह दृष्टि उस समय की सामाजिक मानसिकता के विरुद्ध थी, जो श्रम और सम्मान को परस्पर विरोधी मानती थी।

रैदास का श्रम–दर्शन यह स्पष्ट करता है कि कोई भी कार्य जन्म से ऊँचा या नीचा नहीं होता; कार्य की नैतिकता और उसकी उपयोगिता ही उसका मूल्य निर्धारित करती है। इस प्रकार उन्होंने कर्म को जन्म से अधिक महत्त्व देकर जाति–व्यवस्था की मूल वैचारिक आधारशिला को चुनौती दी–

"संत रैदास की यह विशेषता है कि उन्होंने अपनी आजीविका के लिए चमड़ा मोल लेकर तथा उसके जूते बनाकर श्रम की महत्ता स्थापित की, जबकि उनके समकालीन अधिकांश संत पराश्रित एवं भिक्षा–दान से जीवन चलाते थे। संत रैदास के अनुयायी अभी भी भिक्षा नहीं लेते हैं तथा अपने श्रम से जीवन चलाते हैं। उन्होंने मनुष्य को आलस्य जैसे शत्रु से दूर रहने तथा श्रम करने के लिए समय–समय पर सचेत किया है–
क्या तू सोवे जाग दीवाना, तै जीवन जग सत करि जाना।" [13]

आधुनिक समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखा जाए तो रैदास का यह विचार श्रम की लोकतांत्रिक अवधारणा का प्रारम्भिक स्वरूप है। आज 'डिग्निटी ऑफ लेबर' को आधुनिक लोकतांत्रिक समाज और शिक्षा–दर्शन का मूल मूल्य माना जाता है। रैदास ने इसे लगभग छह शताब्दियों पूर्व अपने जीवन और काव्य के माध्यम से प्रतिष्ठित किया। इस प्रकार उनका श्रम–दर्शन जाति–आधारित ऊँच–नीच के विरुद्ध एक नैतिक एवं सामाजिक प्रतिरोध का प्रभावी साधन बनता है।

मानवतावाद और सामाजिक समता

रैदास के काव्य का मूल स्वर मानवतावादी है। उनके लिए मनुष्य की पहचान उसकी जाति, धर्म, वंश अथवा सामाजिक स्थिति नहीं, बल्कि उसकी मानवता है। यही कारण है कि उनके जाति–विरोध का आधार किसी विशेष वर्ग के प्रति प्रतिशोध नहीं, बल्कि संपूर्ण मानव समाज की समानता और गरिमा है–

"रैदास उपिजइ सभ इक बुंद ते, का ब्राह्मण का सूद।
मुरखि जन न जानइ, सभ मंह राम मजूद।।" [14]

रैदास के अनुसार प्रत्येक मनुष्य ईश्वर की संतान है; इसलिए सभी समान हैं। यह समानता केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक भी है। यदि ईश्वर सभी में समान रूप से विद्यमान है, तो किसी मनुष्य के साथ भेदभाव करना ईश्वर की सृष्टि का अपमान है। इस प्रकार उनका मानवतावाद धार्मिक दर्शन को सामाजिक न्याय से जोड़ता है।

उनकी वाणी में बार–बार प्रेम, करुणा, दया और सह–अस्तित्व की भावना व्यक्त होती है। वे समाज को संघर्ष और विभाजन के बजाय संवाद और समरसता की दिशा में ले जाना चाहते हैं। उनका उद्देश्य किसी वर्ग की विजय नहीं, बल्कि संपूर्ण मानवता की मुक्ति है।

"रैदास इक ही नूर ते, जिमि उपज्यों संसार।
ऊच नीच किह बिध गये, ब्राह्मण अरु चमार।।" [15]

रैदास का मानवतावाद आधुनिक लोकतांत्रिक मूल्यों के अत्यंत निकट है। भारतीय संविधान में निहित समानता, गरिमा, स्वतंत्रता और बंधुत्व के आदर्शों के साथ उनका चिंतन उल्लेखनीय साम्य

रखता है। इस दृष्टि से उनका काव्य केवल धार्मिक साहित्य नहीं, बल्कि सामाजिक नैतिकता का भी महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ है।

बेगमपुराः जातिविहीन समाज की अवधारणा

रैदास के सामाजिक दर्शन की सर्वोच्च अभिव्यक्ति उनकी प्रसिद्ध 'बेगमपुरा' की अवधारणा में दिखाई देती है। 'बेगमपुरा' केवल एक काल्पनिक नगर नहीं, बल्कि न्याय, समानता और मानवीय गरिमा पर आधारित आदर्श समाज की कल्पना है।

"बेगमपुरा शहर को नाउ
दुखु अंदोह न तिहि ठाउ
ना तसवीस खिराजु न मालु
खउफु न खता न तरस जवालु।
अब मोहिं खूब वतन गह पाई
ऊहाँ खैरि सदा मेरे भाई।
काईमु दाईमु सदा पातिसाही
दोम न सेम एक सो आही।
आबादानु सदा मसहूर
ऊहाँ गनी बसहिं मामूर।
तिउ तिउ सैल करहि जिउ भावै
महरम महल न को अटकावै।
कहि रविदास खलास चमारा
जो हम सहरी सु मीतु हमारा।" [16]

इस पद में वे ऐसे समाज की कल्पना करते हैं जहाँ किसी प्रकार का भय, शोषण, कर, अन्याय, जातिगत अपमान अथवा सामाजिक विषमता न हो। यह समाज जन्माधारित विशेषाधिकारों के स्थान पर समान नागरिकता और सम्मान पर आधारित है।

'बेगमपुरा' वस्तुतः जाति–व्यवस्था के विरुद्ध रैदास की सकारात्मक सामाजिक परिकल्पना है। उन्होंने केवल जाति का विरोध नहीं किया, बल्कि उसके स्थान पर एक वैकल्पिक सामाजिक व्यवस्था का आदर्श भी प्रस्तुत किया। यह उनकी वैचारिक मौलिकता का प्रमाण है।

"ऐसा चाहौं राज मैं, जहाँ मिलै सवन को अन्न।
छोट बड़ो सभ सम बसैं, रैदास रहै प्रसन्न।।" [17]

राजनीतिक दर्शन की दृष्टि से 'बेगमपुरा' को नैतिक लोकतंत्र की प्रारम्भिक अवधारणा माना जा सकता है। इसमें सामाजिक न्याय, समान अवसर, मानवीय गरिमा और स्वतंत्रता के वे सभी तत्त्व विद्यमान हैं जिन्हें आधुनिक लोकतांत्रिक राज्य अपने मूल आदर्श के रूप में स्वीकार करता है।

इस प्रकार 'बेगमपुरा' रैदास के जाति–विरोध का अंतिम लक्ष्य है—एक ऐसा समाज जहाँ मनुष्य की पहचान उसकी जाति नहीं, बल्कि उसकी मानवता हो।

समकालीन संदर्भ में रैदास का जाति–विरोधी चिंतन

इक्कीसवीं शताब्दी का भारत लोकतांत्रिक, संवैधानिक और वैज्ञानिक दृष्टि से निरंतर प्रगति कर रहा है। इसके बावजूद जातिगत भेदभाव के अनेक प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप आज भी सामाजिक जीवन में दिखाई देते हैं। शिक्षा, विवाह, रोजगार, सामाजिक प्रतिष्ठा और राजनीतिक प्रतिनिधित्व जैसे क्षेत्रों में जाति का प्रभाव पूर्णतः समाप्त नहीं हुआ है। ऐसी स्थिति में रैदास का चिंतन केवल ऐतिहासिक महत्त्व का नहीं, बल्कि समकालीन सामाजिक पुनर्विचार का आधार बन जाता है।

"कह सकते हैं कि रविदास अपने समय के सर्वाधिक पीड़ित कवियों में हैं। उनका एक–एक शब्द दर्द के दाग़ से रंगा हुआ है लेकिन उनका हर वाक्य मुक्ति के आत्मविश्वास से भरा हुआ है। उनके कवि की आँख तो ज़मीन की तरफ़ धँसी रहती है लेकिन चेतना हमेशा ऊपर की ओर देखती है। वे अपने समय में संपूर्ण रूप से धँसे हुए कवि हैं जिस कारण वे समयबद्ध हैं लेकिन उनके भीतर की बैचौनी इस समय को एक नये समय में रचने की रही है जहाँ समता है, न्याय है, मुक्ति का आस्वाद है। उनके भीतर समाज की जाति पीड़ा है लेकिन इसके भीतर से वे संघर्ष की प्रेरणा भी पाते हैं। यह पीड़ा उन्हें विक्षुब्ध तो करती है लेकिन एक गहरी सामाजिक समझ भी देती है जहाँ वे न केवल इतिहास को समझते हैं बल्कि भविष्य को दिशा भी देते हैं।" [18]

उनका संदेश है कि किसी भी समाज का विकास तब तक पूर्ण नहीं हो सकता जब तक प्रत्येक व्यक्ति को समान सम्मान और अवसर प्राप्त न हों।

विशेष रूप से नई शिक्षा नीति में समावेशी शिक्षा, संवैधानिक मूल्य, नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व पर जो बल दिया गया है, उसके संदर्भ में रैदास का चिंतन अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होता है। मूल्य–आधारित शिक्षा के माध्यम से जातिगत पूर्वाग्रहों को कम करने में उनके विचार महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

मानवाधिकार, सामाजिक न्याय, दलित विमर्श और वैश्विक समानता की समकालीन चर्चाओं में भी रैदास का योगदान उल्लेखनीय है। उनका चिंतन यह स्पष्ट करता है कि सामाजिक परिवर्तन केवल कानूनों से नहीं, बल्कि मानवीय चेतना और नैतिक दृष्टिकोण के परिवर्तन से भी संभव होता है।

रैदास के जाति–विरोधी चिंतन का सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने जाति–व्यवस्था की आलोचना को केवल विरोध तक सीमित नहीं रखा, बल्कि समानता, श्रम, प्रेम और नैतिकता पर आधारित समाज की रचनात्मक परिकल्पना प्रस्तुत की। उनके काव्य में विद्रोह और निर्माण दोनों साथ–साथ चलते हैं।

फिर भी आलोचनात्मक दृष्टि से यह स्वीकार करना आवश्यक है कि रैदास ने सामाजिक परिवर्तन के लिए मुख्यतः नैतिक और आध्यात्मिक चेतना पर बल दिया। आधुनिक समाजशास्त्रीय विश्लेषण यह मानता है कि सामाजिक असमानता केवल मानसिकता का परिणाम नहीं, बल्कि आर्थिक, राजनीतिक और संस्थागत संरचनाओं से भी निर्मित होती है। इसलिए संरचनात्मक परिवर्तन की आवश्यकता पर रैदास अपेक्षाकृत कम प्रकाश डालते हैं।

इसके बावजूद उनकी ऐतिहासिक भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने उस समय सामाजिक समानता की बात कही जब जाति–व्यवस्था को धार्मिक वैधता प्राप्त थी। इस कारण उनका चिंतन भारतीय सामाजिक इतिहास में एक वैचारिक क्रांति के रूप में देखा जाना चाहिए।

समकालीन लोकतांत्रिक भारत में रैदास की प्रासंगिकता इस तथ्य में निहित है कि उनका संदेश किसी एक समुदाय तक सीमित नहीं, बल्कि संपूर्ण मानव समाज के लिए है। उनका जाति–विरोध मानव–विरोध नहीं, बल्कि अमानवीय व्यवस्था का विरोध है; और उनका समतावाद प्रतिशोध नहीं, बल्कि न्याय और सह–अस्तित्व का दर्शन है।

निष्कर्ष

संत शिरोमणि रैदास का काव्य भारतीय संत परंपरा में सामाजिक समानता, मानवीय गरिमा और नैतिक प्रतिरोध का अनुपम उदाहरण है। प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि रैदास ने जाति–आधारित ऊँच–नीच का प्रतिवाद केवल सामाजिक असंतोष के रूप में नहीं, बल्कि एक गहन दार्शनिक और मानवीय दृष्टि के आधार पर किया। उनके लिए जाति केवल सामाजिक संगठन की

समस्या नहीं थी, बल्कि मानव–मर्यादा, आध्यात्मिक समानता और नैतिक सत्य के विरुद्ध एक अमानवीय संरचना थी।

रैदास ने जन्माधारित श्रेष्ठता का खंडन करते हुए कर्म, श्रम, भक्ति और सदाचार को मनुष्य की वास्तविक पहचान माना। यह दृष्टि भारतीय समाज की प्रचलित रूढ़ियों के विरुद्ध एक वैचारिक क्रांति थी। उन्होंने यह स्थापित किया कि ईश्वर की दृष्टि में सभी मनुष्य समान हैं; अतः सामाजिक जीवन में भी समानता और सम्मान का व्यवहार होना चाहिए। इस प्रकार उनका जाति–विरोध किसी एक वर्ग के हित तक सीमित नहीं, बल्कि संपूर्ण मानव समाज की मुक्ति का कार्यक्रम है।

रैदास के काव्य में श्रम की प्रतिष्ठा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने श्रम को सामाजिक हीनता का नहीं, बल्कि नैतिक गरिमा का आधार माना। आधुनिक लोकतांत्रिक समाज में श्रम की गरिमा, समान अवसर और सामाजिक न्याय के जो मूल्य व्यापक रूप से स्वीकृत हैं, उनका प्रारंभिक स्वर रैदास के चिंतन में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

'बेगमपुरा' की अवधारणा उनके सामाजिक दर्शन की चरम अभिव्यक्ति है। यह केवल कल्पनालोक नहीं, बल्कि न्याय, समानता, स्वतंत्रता और मानवीय सम्मान पर आधारित समाज की वैचारिक रूपरेखा है। इस दृष्टि से रैदास का चिंतन आधुनिक लोकतांत्रिक आदर्शों का सांस्कृतिक पूर्वगामी कहा जा सकता है।

समकालीन भारत में भी रैदास का संदेश अत्यंत प्रासंगिक है। संविधान द्वारा प्रदत्त समानता और सामाजिक न्याय के मूल्यों को व्यवहार में रूपांतरित करने के लिए जिस नैतिक चेतना और सामाजिक संवेदनशीलता की आवश्यकता है, उसका प्रभावी आधार रैदास का मानवतावादी दर्शन प्रदान करता है। उनका काव्य हमें यह सिखाता है कि वास्तविक सभ्यता जन्म से नहीं, बल्कि न्यायपूर्ण व्यवहार, सह–अस्तित्व, श्रम के सम्मान और मानवीय करुणा से निर्मित होती है।

अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि संत शिरोमणि रैदास का जाति–विरोधी चिंतन केवल मध्यकालीन सामाजिक यथार्थ की प्रतिक्रिया नहीं, बल्कि भारतीय समाज के लिए एक स्थायी नैतिक, सांस्कृतिक और लोकतांत्रिक दृष्टि है। उनका काव्य आज भी सामाजिक समरसता, मानव–मर्यादा और न्यायपूर्ण समाज के निर्माण के लिए प्रेरणा का अक्षय स्रोत बना हुआ है।

संदर्भ सूची

1. झा ममता, संत रविदास रत्नावली, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2024, पृष्ठ–7
2. शरण जगदीश, रैदास ग्रंथावली मूलपाठ एवं टीका, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, 2019, पृष्ठ–72
3. सुमनाक्षर सोहनपाल, संत शिरोमणि गुरु रविदास विचार दर्शन, संपा. डॉ रामकुमार अहिरवार, एम. एस. गौतम, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, 2023, पृष्ठ–27
4. झा ममता, संत रविदास रत्नावली, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2024, पृष्ठ–90
5. झा ममता, संत रविदास रत्नावली, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2024, पृष्ठ–91
6. शरण जगदीश, रैदास ग्रंथावली मूलपाठ एवं टीका, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, 2019, पृष्ठ–70
7. शरण जगदीश, रैदास ग्रंथावली मूलपाठ एवं टीका, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, 2019, पृष्ठ–74
8. शरण जगदीश, रैदास ग्रंथावली मूलपाठ एवं टीका, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, 2019, पृष्ठ–70
9. चौधरी शकुंतला, संत शिरोमणि गुरु रविदास विचार दर्शन, संपा. डॉ रामकुमार अहिरवार, एम. एस. गौतम, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, 2023, पृष्ठ–74
10. शुक्ल श्रीप्रकाश, राग रविदास, वाग्देवी प्रकाशन, नोएडा, 2023, पृष्ठ–15
11. शुक्ल श्रीप्रकाश, राग रविदास, वाग्देवी प्रकाशन, नोएडा, 2023,पृष्ठ–14
12. शरण जगदीश, रैदास ग्रंथावली मूलपाठ एवं टीका, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, 2019, पृष्ठ–106
13. सूरजभान, संत शिरोमणि गुरु रविदास विचार दर्शन, संपा. डॉ रामकुमार अहिरवार, एम. एस. गौतम, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, 2023, पृष्ठ–117
14. शरण जगदीश, रैदास ग्रंथावली मूलपाठ एवं टीका, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, 2019, पृष्ठ–69
15. शरण जगदीश, रैदास ग्रंथावली मूलपाठ एवं टीका, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, 2019, पृष्ठ–72
16. शुक्ल श्रीप्रकाश, राग रविदास, वाग्देवी प्रकाशन, नोएडा, 2023,पृष्ठ–71
17. शरण जगदीश, रैदास ग्रंथावली मूलपाठ एवं टीका, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, 2019, पृष्ठ–72
18. 18.शुक्ल श्रीप्रकाश, राग रविदास, वाग्देवी प्रकाशन, नोएडा, 2023,पृष्ठ–41